आदर्शवादी महाकाव्य की अभिव्यक्ति–'वाल्मीकि रामायण'

डॉ0 (श्रीमती) मधु सत्यदेव
संस्कृत विभाग,
दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय

कवीन्दुं नौमि वाल्मीकि यस्य रामायणी कथाम्।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः।।

वेद जिस परम् तत्व का वर्णन करते हैं वह श्री मन्नारायण तत्व श्रीमद्रामायण में श्रीराम से निरूपित है। वेदवेद्य परम् पुरूषोत्तम के दशरथ नन्दन श्रीराम के रूप में अवतीर्ण होने पर साक्षात वेद ही वाल्मीकि के मुख से श्री रामायण के रूप में प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकों की चिर काल से मान्यता है। इसीलिए श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की वेद तुल्य प्रतिष्ठा है। योगी वाल्मीकि आदि कवि हैं। अतः विश्व के समस्त कवियों के गुरू हैं। उनका आदि काव्य श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण भूतल का प्रथम काव्य है। भारत के लिए तो वो गौरव ही है और देश के लिए सच्ची अमूल्य निधि है।

प्रत्येक मनुष्य अपने युग के यथार्थ को देखता समझता है। उस यथार्थ में जो सुखद और प्रीतिकर है उसे बनाये रखने और सम्भव हो तो उसमें वृद्धि का प्रयास करता है। जो दुःखद और प्रतिकूल हो उसे हटाकर यथार्थ को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास भी करता है। कवि अपनी लेखनी के माध्यम ऐसा प्रयास करता है। कवि की दृष्टि स्वयं तक सीमित नहीं रहती। वह सम्पूर्ण समाज पर विहंगम दृष्टि डालता है। वर्तमान के साथ–साथ अतीत भी उसकी दृष्टि और संवेदना की परिधि के अन्दर के समाहित रहता है। 'क्या हो रहा है और क्या होना चाहिए' के मध्य जो अन्तर है उसे कवि अपनी से समझ लेता है और यथार्थ में आदर्श को स्थापित करता है। यह समावेश कलात्मक सौन्दर्य के साथ इस प्रकार होता है कि पाठक को कवि की रचना किसी काल्पनिक आदर्श नहीं अपितु यथार्थ की प्रस्तुति प्रतीत होती है। आदर्शवादी महाकाव्य की रचना ऐसे ही क्षमतावान् कवियों द्वारा होती है। विश्व की प्रायः समस्त प्रमुख भाषाओं में इस प्रकार के आदर्शवादी महाकाव्यों की रचनाओं का प्राचुर्य है। इन महाकाव्यों में महर्षि बाल्मीकि रचित रामायण को प्राचीनतम् माना जा सकता है।

निषाद द्वारा क्रोंच पक्षी के वध पर करूणा का अनुभव करते हुए महर्षि वाल्मीकि के मुख से जो वाक्य निकला वह चार चरणों में आबद्ध था।[1] उन्होंने चिन्तन किया कि यह घटना अनायास ही नहीं हुई है। फलस्वरूप उन्होंने श्रीराम के सम्पूर्ण चरित्रों का निरीक्षण कर उन सबको महाकाव्य का रूप देने की चेष्टा की।

रामायण युग तक भारत में राष्ट्र राज्य की भलीभाँति स्थापना हो चुकी थी। देवासुर संग्राम सहित अनेक घटनाएं ऋषि को ज्ञात थी जो यह घोषित कर रही थीं कि राजसत्ता के लिए परिवार में कलह, षड़यन्त्र आदि भी होते हैं, पुत्र सत्ता के लोभ में पिता की भी अवमानना कर देते हैं, भाई–भाई में बैर आ जाना तो एक साधारण घटना हो गयी है। इन परिस्थितियों में उन्हें ऐसा महाकाव्य रचना आवश्यक प्रतीत हुआ जिसका नायक सत्ता के प्रतीक आसक्त न हो, राज्याभिषेक हो अथवा वन गमन उसके मुखमण्डल पर चिन्ता की कोई रेखा नहीं आती। पराक्रमी होने पर भी अत्यन्त विनम्र हो, निर्बल के प्रति उसके हृदय में करूणा हो और दुष्ट आततायी जनों के विनाश में वह सदा तत्पर हो। पिता एवं गुरु का प्रत्येक वचन उसके लिए आज्ञा तो और वह उसका सहर्ष पालन करने के लिए तत्पर हो। इसके लिए श्रीराम का चरित्र चित्रण ऋषि को सर्वोत्तम लगा। नायक राम अपने अनुजों के हितों का ध्यान रखते हैं और समस्त अनुज भी पिता के पश्चात् अग्रज को सम्माननीय मानते हैं। भाईयों के मध्य का यही त्याग मन्थरा, कैकेयी को लज्जित कर देता है और उन्हें अपने षड़यन्त्रों के लिए ग्लानि होती है।

कवि अपने महाकाव्य में जिन आदर्शों की स्थापना करता है वे उस युग की अवधारणाओं से निर्मित होते हैं। आदर्श राजतन्त्र में साधारण परिस्थिति में सर्वाधिक योग्य राज कुमार को ही उत्तराधिकारी बनाया जाना उचित था और इसमें प्रजाजनों के हितों का भी ध्यान रखना आवश्यक माना जाता था। ऐसी परिस्थिति में राजतन्त्र के आदर्श के अनुसार तो राम को ही अयोध्या का राजा बनना चाहिए था किन्तु यहां पिता की आज्ञा का पालन राजतन्त्रात्मक आदर्श से अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। 'पिता के वचनों का पालन करना ही पुत्र का कर्त्तव्य है' ऐसी अवधारणा से प्रस्थान करने वाले श्रीराम अकेले नहीं थे, परशुराम ने पिता जमदग्नि के आदेश पर अपनी माँ का वध कर दिया था (भले ही बाद में पिता से उन्हें जीवित करने का वर मांगकर माँ को जीवित कर दिया था)।' नचिकेता ने पिता के वचन के अनुसार यम के पास जाने का निर्णय ले लिया था, पुरू ने पिता ययाति को यौवन दान कर दिया था (श्रवण कुमार का उदाहरण यहां इसलिए नहीं दिया जा सकता क्योंकि उनकी परिस्थितियां भिन्न हैं अन्धे माता–पिता के प्रति यहां आज्ञा पालन से अधिक सेवा भाव की प्रधानता है)। पिता के वचनों का पालन राम को इतना महत्वपूर्ण लगता है कि गुरु वशिष्ट के कहने पर भी राम अयोध्या नहीं लौटते हैं। यद्यपि गुरु वशिष्ट के तर्क भी यहां प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत हैं। उनका तर्क है कि – 'इस संसार में उत्पन्न हुए पुरूष के सदा तीन गुरु होते हैं– आचार्य, पिता और माता। पुरूष प्रवर! पिता पुरूष के शरीर को उत्पन्न करता है इसलिए गुरु है और आचार्य उसे ज्ञान देता है इसलिए गुरु कहलाता है। शत्रुओं को सन्ताप देने वाले रघुवीर! मैं तुम्हारे पिता का और तुम्हारा भी आचार्य हूँ। अतः मेरी आज्ञा का पालन करने से तुम सत्पुरूषों के पथ का त्याग करने वाले नहीं समझे जाओगे, तात! यह तुम्हारे सभासद, बन्धु–बान्धव तथा समस्त राजा पधारे हुए हैं, इनके प्रति धर्मानुकूल बर्ताव करने से भी तुम्हारे सन्मार्ग का भी उल्लंघन नहीं होगा।' अपनी धर्मपरायणा बूढ़ी माता की बात तो तुम्हे कभी नहीं टालनी चाहिए, इनकी आज्ञा का पालन करके तुम श्रेष्ठ पुरूषों के आश्रयभूत धर्म का उल्लंघन करने वाले नहीं माने जाओगे।[2] किन्तु यह सब सुनकर भी राम कहते हैं– कि माता और पिता पुत्र के प्रति जो सर्वदा स्नेहपूर्ण बर्ताव करते हैं, अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम खाद्य पदार्थ देने, अच्छे बिछौने पर सुलाने, उबटन आदि लगाने, सदा मीठी बात बोलने तथा पालन–पोषण करने आदि के द्वारा माता–पिता ने जो उपकार किया है उसका बदला सहज ही नहीं चुकाया जा सकता। अतः मेरे जन्मदाता पिता दशरथ ने जो मुझे आज्ञा दी है वह मिथ्या नहीं होगी।[3]

महर्षि वाल्मीकि ने राम को न केवल पिता की भावना समझने वाले और उनके वचनों का पालन करने वाले पुत्र के रूप में चित्रण किया अपितु अनुजों की मनःस्थिति को समझने वाले अग्रज के रूप में भी प्रस्तुत किया। भरत के लिए अयोध्या का राजपद लेना दुष्कर है इसको समझते हुए ही उन्होंने 14 वर्ष पश्चात् पुनः शासन अपने हाथों में लेना स्वीकार किया और इन 14 वर्षों में भरत का राम के प्रतिनिधि के रूप में शासन करने का अनुरोध भी स्वीकार किया।

वाल्मीकि ने रामायण में यह भी स्थापित किया कि पारिवारिक त्याग और प्रेम में आयी किसी भी प्रकार की विसंगति से अनिष्ट हो सकता है। इसे सर्वप्रथम बालि–सुग्रीव प्रसंग के माध्यम से प्रस्तुत किया। बालि ने सुग्रीव को गुफा के द्वार पर प्रतीक्षा करने का आदेश दिया था और स्वयं मायावी का बध करने चला गया। सुग्रीव ने एक वर्ष तक प्रतीक्षा की और फिर गुफा से रक्त प्रवाह देखकर यह देखा कि अग्रज बालि की मृत्यु हो गयी है। मंत्रियों तक यह समाचार पहुंचने पर सुग्रीव को राजा बना दिया गया। मायावी को मारकर जब बालि वापस आया और गुफा का द्वार बन्द देखा फिर सुग्रीव को राजा के पद पर बैठे देखकर उसे ही षड़यन्त्रकारी समझ लिया। बालि यह समझने में विफल रहा कि सुग्रीव किसी भी परिस्थिति में उसके विरूद्ध षड़यन्त्र नहीं कर सकता। फलस्वरूप दोनों भाईयों में वैमनस्य हुआ जिसका अन्त राम के हाथों बालि के बध से हुआ। बालि वध के पश्चात् अंगद के मन में सुग्रीव के प्रति कटु भाव उत्पन्न हुआ था जो समय–समय पर प्रकट होता रहा। सीता की खोज में असफलता के क्षणों

में अंगद ने सुग्रीव के प्रति इस भावना को प्रकट करते हुए कहा था कि– 'जिसने अपने बड़े भाई के जीते जी उनकी प्यारी महारानी को जो धर्मतः उसकी माता के समान थी, कुत्सित भावना से ग्रहण कर लिया था, वह धर्म को जानता है यह कैसे कहा जा सकता है। जिस दुरात्मा ने युद्ध के लिए जाते हुए भाई के द्वारा नियुक्त होने पर भी पत्थर से उसका मुंह बन्द कर दिया वह कैसे धर्मज्ञ माना जा सकता है।[4] सुग्रीव पर आक्षेप करते हुए अंगद ने यह आशंका भी व्यक्त की कि 'सुग्रीव शठ, क्रूर और निर्दयी है, वह राज्य के लिए मुझे गुप्त रूप से दण्ड देगा अथवा सदा के लिए मुझे बन्धन में डाल देगा।[5] सुग्रीव के प्रति अंगद के मन विद्यमान कटु भावना का समापन हनुमान और राम–लक्षमण की संगति और व्यवहार के कारण हो सका। बालि–सुग्रीव के पश्चात् पारिवारिक प्रेम और स्नेह के प्रति विसंगति का अगला उदाहरण महर्षि ने रावण–कुम्भकरण और विभीषण के परस्पर सम्बन्धों के माध्यम से व्यक्त किया है। अग्रज का सम्मान करना चाहिए उसके हित के अनुकूल परामर्श देना चाहिए। इस सम्बन्ध में रावण के प्रति कुम्भकरण और विभीषण का आचरण समान था किन्तु प्रश्न उस समय उठ खड़ा हुआ जब अग्रज गलत आचरण कर रहा हो और कुटुम्ब सहित कालग्रस्त होने जा रहा हो। तब भी उसकी आज्ञा मानना ही अनुज धर्म होगा अथवा ऐसे अधर्मयुक्त आचरण का विरोध उचित होगा? यहां कुम्भकरण और विभीषण का आचरण भिन्न था। रावण द्वारा सीता हरण और फिर किसी भी स्थिति सीता को नहीं लौटाने के निर्णय पर कुम्भकरण क्रोधित हो उठा उसने रावण को फटकारा और यहां तक कह दिया कि 'जैसे विष मिश्रित भोजन खाने वाले के प्राण हर लेता है उसी प्रकार श्रीराम तुम्हारा बध कर डालेंगे। उन्होंने अभी तक तुम्हे मार नहीं डाला इसे अपने लिए सौभाग्य की बात समझो।'[6] इतना कहने के बाद भी अपना निर्णय सुनाते हुए कहता है कि 'अनघ! यद्यपि तुमने शत्रुओं के साथ अनुचित कार्य आरम्भ किया है तथापि मैं तुम्हारे शत्रुओं का संहार करके सबको ठीक कर दूंगा।[7] कुम्भकरण ने अपने वचन के अनुसार रावण के पक्ष में युद्ध किया और राम के हाथों मारा गया। विभीषण ने इससे भिन्न मार्ग अपनाते हुए भाई को उचित परामर्श दिया और उसके हाथों अपमानित होकर लंका से निष्कासन का दण्ड भोगा। अन्ततः विभीषण ने संकट की घड़ी में राम का साथ दिया और भाई तथा कुटुम्बीजनों से द्रोह का कलंक भी झेला। परिवार का प्रत्येक जटिल स्थिति में उचित –अनुचित का ध्यान किये बिना साथ देना चाहिए, यह मूल्य भारतीय समाज में इतनी गहराई तक विद्यमान रहा है कि बाल्मीकि, तुलसी सहित अनेक रामकथा रचनाकारों द्वारा विभीषण के गुणों की प्रस्तुति भी जनमानस को विभीषण का पूर्ण पक्षधर नहीं बना सकी और आज भी भारतीय समाज में कोई अपने पुत्र का नाम विभीषण नहीं रखता। इसके अतिरिक्त 'घर का भेदी लंका ढाये' की कहावत् समाज में व्याप्त हो गयी।

कहने का आशय यह है वस्तुतः वाल्मीकि ने नैराश्य सागर में निमग्नप्राय जनसमुदाय को आदर्शवाद का सन्देश दिया। रामायण में शक्ति–सौन्दर्य एवं वैराग्य आदि भारत की सर्वश्रेष्ठ सांस्कृतिक भावऋद्धियों से समन्वित होने के कारण यह आदि काव्य और आगे चलकर विश्व महाकाव्य बन गया।

सन्दर्भ

1. मा निषाद प्रतिष्ठां, त्वमगमः शाश्वतो समः।
यत्र क्रोंचमिथुनादेकमवधिः काम मोहितम्।।
श्रीमद् वाल्मीकिय रामायण बालकां0 2/15

2. पिताहोनं जनयति पुरूषं पुरूषर्षभ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्य स्तस्मात् स गुरूच्यते।।
स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परंतप।
मम् त्वं वचनं कुर्बन नातिवर्ते सतां गतिम्।।
इमा हिते परिषदो ज्ञातयश्च नृपास्तथा।

एसु तात चरन् धर्मे नातिवर्ते सतां गतिम्।।
वृद्धाया धर्मशीलाया मातुर्नार्हस्य वर्तितुम्।
अस्पा हि वचनं कुर्वन् नातिवर्तेः सतां गतिम्।।

वही अयोध्या काण्ड 111/3 से 6

3. वही 111/9 से 11

4. भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्या जीवतो महिषीं प्रियाम्।
धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः।।
कथ स धर्मं जानीते येन भ्रात्रा दुरात्मना।
युद्धयाभिनियुक्तेन बिलस्य पिहितं मुखम्।।

वही किष्किन्धा काण्ड 55/3 व 4

5. उपांशुदण्डेन हि मां बन्धेनोपादयेत्।
शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात्।।

वही 55/10

6. त्वयेदं महरादब्धं कार्यम् प्रतिचिन्ततम्।
दिष्ट्या त्वां नावधीद् रामोविषमिश्रमिवामिजम भव मिषम्।।

वही युद्ध काण्ड 12/34

7. तस्मात् त्वया समाराब्धं कर्महत्य प्रतिमं परैः।
अहं समीकरिष्यामि अथवा शत्रुस्तवानघ।

वही 12/35